हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 30, अप्रैल 2011

बांस की फांस में रुका विकास

भारतीय वन अधिनियम बांस को लंबे समय से लकड़ी मानता रहा है, जिसका सीधा-सा अर्थ है कि इस पर वन विभाग का अधिकार है। पर क्या यह सही है?

सुनीता नारायण
निदेशक, सेंटर फॉर साइंस ऐंड एनवायर्नमेंट

कलम की ताकत से होने वाले बदलाव महत्वपूर्ण होते हैं। खासकर तब, जब नीतियां धीरे-धीरे घिसट रही हों और जिन बदलावों की हमें जरूरत है, वे कहीं नजर न आ रहे हों। जरूरी यह होता है कि हम एक उस चीज को पकड़ लें, उस नस तक पहुंच जाएं, जिससे चीजें अपने आप गति पकड़ लें। मुझे लगता है कि केंद्रीय पर्यावरण व वन मंत्री जयराम रमेश की सभी मुख्यमंत्रियों को लिखी गई वह चिट्ठी ऐसा ही बदलाव ला सकती है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि बांस घास हैं, लकड़ी नहीं।

मैंने इस पर काफी कुछ लिखा है कि बांस को क्यों घास मानना चाहिए। बांस आमतौर पर खर-पतवार की तरह उग जाते हैं। वे काफी तेजी से बढ़ते हैं और उनका इतना ज्यादा इस्तेमाल होता है कि उन्हें आर्थिक संपदा माना जा सकता है। इसलिए अगर आप लोगों को घास उगाने, उसकी खेती करने, उसका हर तरह से इस्तेमाल करने की इजाजत दे देते हैं, तो आप एक तरह से लोगों को आर्थिक संपदा भी सौंप देते हैं।

लेकिन नीति का मामला ऐसा फंसा कि यह बदलाव मुमकिन ही नहीं लग रहा था। भारतीय वन अधिनियम बांस को लंबे समय से लकड़ी मानता रहा है, जिसका सीधा-सा अर्थ है कि इस पर वन विभाग का अधिकार है। यानी जो लोग अपने घर के पिछवाड़े में बांस लगाते हैं, वे भी उन्हें काट नहीं सकते, या उनका इस्तेमाल नहीं कर सकते, जब तक कि वे वन विभाग से ऐसा करने की इजाजत नहीं ले लेते।

आज अगर अन्ना हजारे का आंदोलन एक आंधी की तरह पूरे देश भर में छा जाता है, तो इस आंदोलन को हम इससे भी जोड़कर देख सकते हैं। दरअसल वह भारी-भरकम सरकारी नीतियां ही हैं, जो भ्रष्टाचार को पालती-पोसती हैं। इसलिए जरूरी यह है कि सबसे पहले नीतियों में बदलाव लाया जाए। इस मामले में सामान्य गांव वालों या आदिवासियों को बांस काटने की इजाजत तभी मिल पाती है, जब वे कागजी खानापूरी की एक जटिल जंग लड़ लें या फिर ऐसा करने के लिए अधिकारियों की जेब ठीक से गरम कर लें। ज्यादातर राज्यों में बांस को काटने के लिए ट्रांजिट पास चाहिए होता है। इस ट्रांजिट पास को हासिल करने के लिए बांस के मालिक को राजस्व का रिकॉर्ड भरना होता है, और फिर कलेक्टर या वन विभाग से पेड़ काटने की इजाजत हासिल करनी होती है। इस इजाजत को हासिल करने का अर्थ है- दस अलग-अलग विभागों से अनापत्ति प्रमाणपत्र हासिल करना और हेडक्वार्टर के कई चक्कर लगाना। आम तौर पर इसका आसान तरीका यह निकाल लिया गया है कि किसी दलाल को पकड़ लीजिए, जो सब जगह पैसा दे-दिलाकर आपको इजाजत के सारे कागजात दिलवा दे। इस सबके चक्कर में, जिस व्यक्ति ने पेड़ को लगाया और पाला-पोसा है, उसके हाथ ज्यादा कुछ नहीं आता। यानी ऐसा कोई प्रोत्साहन नहीं है, जिसके चलते कोई शख्स इस तरह के पेड़ लगाए। नतीजा यह है कि कोई पेड़ लगाता ही नहीं। नुकसान पर्यावरण का होता है।

अब यह सब बदल सकता है। जयराम रमेश की चिट्ठी से यह बिल्कुल साफ हो गया है कि बांस के मामले में अब वन अधिनियम का यह प्रावधान नहीं लागू होगा। वैसे भी, वनोपजों से संबंधित एक कानून साल 2006 में ही बन गया था, जिसमें जगल के कई उत्पादों के स्वामित्व, उनके संग्रह और उनके कारोबार का अधिकार परंपरागत बनवासियों और वन में रहने वालों को दिया गया था। इस कानून में बांस को भी ऐसा ही उत्पाद माना गया था। केंद्रीय मंत्री की चिट्ठी में मुख्यमंत्रियों से कहा गया है कि वे अपने-अपने वन प्रशासन को स्पष्ट कर दें कि बांस पेड़ नहीं, ऐसा ही एक उत्पाद है, जिस पर उसके स्वामित्व वाले व्यक्ति का पूरा अधिकार है।

हालांकि बांस को घास माना जाए, इसके लिए अब भी काफी कुछ करने की जरूरत है। आखिर में हमें सरकार की उस व्यवस्था को बदलना होगा, जिसे हमारे लोगों और हमारे पर्यावरण की सुध लेनी होती है। डाउन टू अर्थ के संस्थापक संपादक अनिल अग्रवाल ने कहा था कि जब तक हम ऐसी सरकारी व्यवस्था नहीं बना लेते, जिसमें लोगों की भागीदारी और पारदर्शिता हो, तब तक भ्रष्टाचार खत्म नहीं होगा। अगर हमें भ्रष्टाचार और लोगों से होने वाली अवैध वसूली को रोकना है, तो सरकार की इसी व्यवस्था पर काम करना होगा। मंत्री ने चिट्ठी लिखकर इस दिशा में एक बड़ा कदम उठाया है। उन्होंने कहा है कि ग्राम सभाओं के पास यह तय करने का अधिकार होना चाहिए कि बांस पर किसका स्वामित्व है। यह सामुदायिक संपत्ति है या निजी। उसके पास ट्रांजिट पास देने का अधिकार होना चाहिए। अब हमें ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था बनानी होगी, जिससे यह इजाजत ऐसे लोगों के हाथ में न पहुंच जाए, जो वनों का विनाश करते हैं। लेकिन निश्चित तौर पर यह एक बड़ी शुरुआत तो है ही।

अब इसकी संभावनाएं देखिए। भारत के कागज उद्योग को बड़ी तादाद में कच्चे माल की जरूरत है, और बांस कागज की लुगदी बनाने के लिए सबसे अच्छा कच्चा माल हो सकता है। बांस को लकड़ी माना जाता था, इसलिए उद्योग और वन विभाग ने ठेके की ऐसी व्यवस्था बनाई थी, जिससे उद्योगों को बांस और दूसरी लकड़ी बहुत ही सस्ते दाम पर मिल जाती थी। उद्योगों को जंगलों के बड़े-बड़े हिस्से लीज पर दे दिए गए थे। इससे वन कट गए और अब उद्योगों के लिए भी कच्चे माल की कमी हो गई है। और इस नीति ने किसानों द्वारा इन चीजों की फसल लगाने की संभावना को भी खत्म कर दिया। विश्लेषणों से पता चलता है कि अगर भारत में 15 लाख हेक्टेयर जमीन पर बांस उगाए जाएं, तो उद्योगों की कच्चे माल की जरूरत पूरी हो सकती है।

अब उद्योगपति इसे जमीन के मालिकों, गांववासियों और ग्राम सभाओं से खरीद सकते हैं। अब उन्हें बाजार भाव पर इसका भुगतान करना होगा, जिससे कच्चे माल का दाम थोड़ा बढ़ेगा भी। लेकिन इससे पैसा सीधे लोगों के हाथ में पहुंचेगा और पेड़ उगाना एक विकास का अच्छा साधन बन जाएगा। मैं इसे बड़ी बात इसलिए भी मानती हूं, क्योंकि इस एक कदम से ही हम बिना रोजगार वाले विकास के दुष्चक्र के बाहर आ सकेंगे। यह हरित विकास का मॉडल है। दुनिया को ऐसे अवसरों की तलाश है, जिनसे जंगलों में हरियाली भी आए और आर्थिक संपत्ति भी पैदा हो। बांस के जंगलों का लोगों के हाथ में आ जाना हमारे हरे-भरे कल के लिए बहुत बड़ा कदम है।